



शासन शिरोमणि
 निश्चयरत्नत्रयात्मक
 मोक्षमार्ग प्रकाशक,
 भावि के भगवान,
 जिनेन्द्र लघुनंदन
 पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीकी
 १२९वीं जन्मजयंति के
 मंगलकारी प्रसंग पर उनके
 पावन पदपंकज में
 शत शत
 वंदन हो!

गुरुदेव तो स्वयं एक अलौकिक द्रव्य थे, अलौकिक उनका परिणमन था और पुण्यका वाणीका योग भी कोई अलौकिक सातिशय योग था। गुरुदेवश्री को श्रुतकी लब्धि थी। श्रोताओको तो कानमें जैसे कोई अमृतकी धार करता हो ऐसा मीठा लगे! कुछ एक जीवनको तो ऐसा लगा है कि जैसे कोई दैवी वाणी निकल रही है!! एक असाधारण युगपुरुष जैसा गुरुदेवका व्यक्तित्व था और कर्तृत्व भी ऐसा ही था।

- पूज्य भाईश्री शशीभाई

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४५: अंक-२४५, वर्ष-२२, अप्रैल-२०१८

आषाढ शुक्ल ६, शुक्रवार, दि. २४-६-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, प्रवचन-१७, गाथा-४८-४९

‘राग-द्वेष त्यागकर आत्मस्थ होना धर्म है।
राय-रोस बे परिहरिवि, जो अप्पाणि वसेइ।
सो धम्मु वि जिण-उत्तियउ, जो पंचम-गइ
णेइ।।४८।।

क्या कहते हैं? बहुत संक्षिप्त शब्दों में संक्षिप्त कहते हैं। जो कोई आत्मा, पुण्य और पाप के, राग और द्वेष के भाव को छोड़कर... शुभ और अशुभभाव जो राग-द्वेषमय है, वह बन्ध का कारण है, उसे छोड़कर... ‘अप्पाणि वसेइ’ जो आत्मा में बसता है। देखो! पुण्य और पाप के भाव में बसना, वह आत्मा में बसना नहीं है-ऐसा कहते हैं। इस शुभभाव में बसना भी आत्मा का बसना नहीं है-ऐसा कहते हैं। बहुत संक्षिप्त भाषा में (कहते हैं)।

राग-द्वेष के विकल्प छोड़कर, शुभ-अशुभ की-राग की वृत्तियाँ छोड़कर ‘अप्पाणि वसेइ’ ‘अप्पाणि’ यह त्रिकाली आत्मा है, बसना वह अन्दर स्थिरता है। आत्मा में विश्राम कर। आहाहा..! भगवान चैतन्यधाम अन्दर विराजमान है, पूर्णानन्द का नाथ भगवान आत्मा शाश्वत विराजमान है आत्मा; उसमें बस, उसमें निवास कर, उसमें स्थिर हो-यह मुक्ति का उपाय है। यह योगसार है-ऐसा कहना है न! ‘वसेइ’ यह योगसार है। जिसे भगवान, आत्मा कहते हैं, वह तो शुद्धस्वभावी वस्तु है। शुद्धस्वभावी वस्तु

में बसने को योगसार कहते हैं, उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं।

‘सो धम्मु जिण वि उत्तियउ’ इसे वीतरागी परमेश्वर ने धर्म कहा है। सर्वज्ञदेव परमेश्वर, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान था-ऐसे परमेश्वरने आत्मा में बसने को धर्म कहा है। देखो भाषा है न? आहाहा..! परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा वीतराग परमेश्वर की वाणी में ऐसा आया है कि जितना भगवान आत्मा शुद्धभाव है, उसमें बसे, उसे उतना धर्म होता है। समझ में आया?

‘सो धम्मु जिण वि उत्तियउ’ वीतराग परमेश्वरने- सर्वज्ञदेव ने यह आत्मा आनन्दमय देखा है, इस आनन्द में जितना बसे, उतना भगवान परमात्मा ने धर्म कहा है। जितना यह पुण्य और पाप में जाये, उसे भगवानने अधर्म कहा है। आहाहा..! अद्भुत बात! बहुत कठिन बात, चलता है न? दिल्ली में क्या चलता है? थोड़ा चलता है-ऐसा कहते हैं।

भाई! यह एक आत्मा है या नहीं? तो आत्मा तो उसे कहते हैं कि जिसमें कर्म, शरीर और पुण्य-पाप के भावरहित चीज को आत्मा कहते हैं। आत्मा उसे कहते हैं और केवली ने उसे आत्मा कहा, परमेश्वर ने उसे आत्मा कहा है। शरीर, कर्म को तो भगवान ने अजीव कहा है। वाणी, शरीर और कर्म अजीव

कहे; आत्मा में पुण्य-पाप के भाव हों उन्हें भगवानने आस्रव-बन्ध का कारण कहा है। वे कहीं आत्मा नहीं है। आहाहा..! अद्भुत बात! कठिन...। इस आस्रव के पुण्य-पाप के भावरहित त्रिकाली आत्मचीज को अकेले वीतराग-विज्ञानघन शुद्धभाव से भरपूर तत्त्व है-ऐसे शुद्धभाव में बसे, उसे शुद्धभाव प्रगट होता है। समझ में आया? जितना यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम में, आवे उतना वह अशुद्धभाव है, बन्धभाव है, वह अधर्मभाव है।

मुमुक्षु :- अशुद्धभाव अर्थात् बन्धभाव।

उत्तर :- यहाँ तो कहा

न, देखो न! दो ही भाषा है, दो ही बात है। राग-द्वेष के विकल्प शुभ हों या अशुभ हों, उन्हें छोड़कर, भगवान आत्मा अनन्त शान्त और आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु में बसे, वह भगवान आत्मा आत्मा में बसे, रहे, स्थिर हो, एकाग्र हो, उतना शुद्धभाव प्रगट होता है, उतना भगवान ने धर्म कहा है और वह

धर्म पंचम गति का कारण है। 'णेई' है न? पंचम गति को प्राप्त कराता है। 'णेई' अर्थात् 'ले जाता है।' वह धर्म पंचम गति मोक्ष को प्राप्त कराता है परन्तु बीच में यह शुभभाव दया, दान, व्रतादि, भगवान की भक्ति आदि हो भले परन्तु वे मोक्ष को पहुँचावे-ऐसी उनमें ताकत नहीं है। वे बन्ध के कारण हैं। आहाहा..! जैसे पाप के भाव, बन्ध का कारण हैं, वैसा ही पुण्य का भाव भी बन्ध का कारण है। उनमें बसना वह कहीं मोक्षगति में ले जाये-ऐसी उनमें ताकत नहीं है। दोनों दुःख है, क्या कहा इन्होंने?

मुमुक्षु :- इतना मार्ग तो कटेगा....

उत्तर :- जरा भी नहीं कटेगा। दोनों ही-पुण्य

और पाप बन्ध के ही कारण हैं। आहाहा..! इसे गले उतारना (कठिन पड़ता है)।

भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग ने ज्ञान में तेरा आत्मा देखा, वह आत्मा तो पूर्ण शुद्ध आनन्दकन्द है। ऐसे आत्मा में अन्तर में एकाग्र होकर स्थिर होना, इसका नाम शुद्धोपयोग और शुद्धधर्म है, यह एक ही मुक्ति कारण है; बाकी कोई मोक्ष का कारण है नहीं। आहाहा..! देखो न? वे धर्म मानकर बेचारे मन्दिर और यात्रा पाँच-पाँच लाख निकालते हैं; यात्रा (करेंगे तो) मुक्ति होगी

(ऐसा मानते हैं) धूल में

भी नहीं होगी। राग मन्द (आवे) अशुभ से बचने के लिए शुभभाव होता है, अशुभ से बचने को शुभभाव होता है परन्तु उससे संवर-निर्जरा होवे-ऐसा है नहीं। अद्भुत बात, भाई! तो करना किसलिए? वह भाव आवे, भाई! जब इसे पापभाव न हो, एक बात। शुद्धस्वरूप में स्थिरता न

हो, दो बात। क्या कहा? शुभभाव अपने आप आता है, आये बिना रहात ही नहीं। जब तक आत्मा पूर्ण वीतरागपने को न प्राप्त करे, तब तक बीच में शुभभाव आता है परन्तु वह आवे तो मोक्ष का कारण है-ऐसा नहीं है। आत्मा को शान्ति का कारण है-ऐसा नहीं है। वह शुभभाव स्वयं ही अशान्ति है। आहाहा..! यह देखो आया, अशुभभाव तीव्र अशान्ति, शुभभाव मन्द अशान्ति परन्तु है अशान्ति। लो, ठीक! परन्तु अशान्ति है, उसमें जरा शान्ति नहीं है। जरा नजदीक नहीं, अशान्ति में क्या नजदीक आया।

भगवान आत्मा सच्चिदानन्दप्रभु अनादि-अनन्त चैतन्य ज्योत, अनादि-अनन्त अकृत्रिम-अकृत अविनाशी-



ऐसा चैतन्यप्रभु, उसके स्वभाव में तो परमानन्द और शुद्धता भरी है। उसे पुण्य-पाप के विकल्प से हटकर स्वरूप में बसना, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-वह आत्मा में बसना है। **‘सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः’** वह भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यदेव के शिष्य उमास्वामी ने कहा है। **‘सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः’**-यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा की निर्विकल्प शुद्ध पर्याय है। यह आत्मा में बसे, वह पर्याय कहलाती है। निमित्त और राग में अटके, उसे वहाँ आत्मा में बसा-ऐसा कहाँ से आया? आत्मा में बसे, उसे आत्मा की पूर्णदशा प्रगट होती है। समझ में आया?

मुमुक्षु :- रोग घटे किस प्रकार?

उत्तर :- परन्तु रोग घटे कब? आत्मा में रोग ही नहीं है, रोगरहित चीज और निरोगता देखे, उसमें स्थिर हो तो निरोगता प्रगट हो। १०५ डिग्री बुखार घटा और ९९ रहा, छह महीने चला तो उसे क्षयरोग की शंका पड़ेगी। ९९-९९ रहा करे, भाईसाहब! कुछ होगा, रात्रि में गर्म बहुत रहता है। रात्रि बारह बजे बाद तपता है। छह महीने तक न मिटे तो उसे यहाँ होस्पिटल आना चाहिए। उसे ‘अमरगढ’ की होस्पिटल फोटो लेने आना चाहिए। क्या है? भाई! छह महीने से ९९, ९९, ९९९ थोड़ा-थोड़ा रहा करता है। वह लम्बे काल रहे तो क्षय में जाये। समझ में आया? इसी प्रकार मन्दराग भी ऐसा का ऐसा कर्तृत्वबुद्धि से रहे तो वह क्षय में-मिथ्यात्वमें जाता है। आहाहा..!

धर्म तो आत्मा का निजस्वभाव है। जिनेन्द्र ने धर्म कहा, भगवान् ने इसे धर्म कहा... **‘धर्म अपने ही पास है’** कहीं बाहर ढूँढ़ने जाना पड़े-ऐसा नहीं है। जगत् को व्यवहार से देखना, ऐसी एक बात ली है, ठीक है। दो-तीन बातें सब ली है, ठीक है, साधारण बात है। कहो? यह ४८ गाथा (पूरी) हुई।

४९. **‘आशा-तृष्णा ही संसार भ्रमण का**

कारण है।’

**आउ गलइ णवि मणु गलइ, णवि आसा हु गलेइ।
मोहु फुरइ ण वि अप्पहिउ, इम संसार भमेइ।।४९।।**

कहते हैं, अरे! आत्मा, आयु तो बीती जा रही है। भाई! जो कुछ आयु लेकर आया-८०-८५-९०-१००, यह आयुष्य तो बीता जा रहा है, बापू! आयुष्य गलता है परन्तु तेरी तृष्णा नहीं गलती। आहाहा..! है न? **‘आयु गलती जाती है परन्तु मन नहीं गलता है।’** आहाहा..! क्योंकि जहाँ पर की भावना है, उसमें मन गले किस प्रकार? आत्मा आनन्दस्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान के बिना तृष्णा नहीं घटती। अज्ञानी को, यह करूँ, यह करूँ, यह करूँ, यह करूँ... पुण्य-पाप करूँ, पुण्य-पाप करूँ, पुण्य-पाप करूँ... यह तृष्णा चलती जाती है।

‘न आशा, तृष्णा गलती है।’ बड़ा हुआ ऐसे अन्दर गहरे-गहरे आशा बढ़ती ही जाती है, उस आशा का छोर लम्बा होता है। आशा का बीज बोया हो और फिर बड़ा हो, वृद्ध हो, तो हो गया, कर सके नहीं फिर झपट्टे मारे, अन्दर विचार के झपट्टे मारे, इसका ऐसा होवे तो ठीक... इसका ऐसा होवे तो ठीक। अब कुछ कर सकता नहीं ठीक हो या न ठीक हो, तुझे क्या काम? आत्मा का ठीक हो तो तेरा कल्याण होगा। समझ में आया? आशा, तृष्णा गलती नहीं है।

‘मोहभाव फैलता रहता है।’ भगवान् आत्मा के स्वरूप की श्रद्धा और भान बिना यह करूँ.. ऐसा कहना चाहते हैं। यह पर तरफ का यह करूँ, यह करूँ इसमें तो तृष्णा बढ़ जाती है। इसमें कहीं आत्मा को एकाग्र होने का प्रसंग नहीं है। आहाहा..! आनन्दघनजीने कहा है न **‘आशा औरन की क्या कीजै? आशा औरन की क्या कीजै? ज्ञान सुधारस पीजै, आशा औरन की क्या कीजै?’** समझ में आया? **‘भटकत द्वार-द्वार लोकन के कूकर आशाधारी’** कूकर आशा-कुत्ता होता है न? कुत्ता। **‘भटकत द्वार-द्वार**

लोकन के' भूख लगे (इसलिए) बाहर में जहाँ-तहाँ भटकता है। दरवाजा हो वहाँ सिर मारता है। ऐ... टुकड़ा देना, ऐ.. टुकड़ा देना, ए... टुकड़ा देना, इसी प्रकार यह मूढ़ जहाँ हो वहाँ मान देना, मुझे बड़ा कहना, मान देना, मुझे बड़ा कहना, मुझे अच्छा कहना, मैं ऊँचा हूँ-ऐसा कहना। इस आशा तृष्णा के टुकड़े माँगने में भिखारी (की तरह) भ्रमण किया करता है। आहाहा..!

मुमुक्षु :- मैं बड़ा हूँ-ऐसी आशा रखे, कहने न जाये।

उत्तर :- कहने जाये, जुलूस निकाले उसे कहने जाये। दो-चार तो व्यक्तिगत कहना, हाँ! मैं यहाँ से जाता हूँ और जुलूस तैयार करना, मेरा नाम मत लेना। समझ में आया? और पैसा चाहिए हो तो मैं दूँगा.. दो सौ-तीन सौ चाहिए हो तो मैं दूँगा परन्तु जुलूस निकालना, जुलूस सब इकट्ठे होवें और बहुत लोग हों, मैं तो उसके योग्य नहीं था परन्तु मुझे तुमने यह सम्मान दिया, यह तुम्हारा बड़प्पन है-ऐसा कहकर एक-दूसरे को मक्खन लगाते हैं। हैं? मैं तो इस योग्य नहीं था परन्तु यह तुम्हारा बड़प्पन है कि तुम दूसरे को मान देते हो। वे भी प्रसन्न हों और यह भी प्रसन्न हो जाता है। जा मरो दोनों! बनता है न ऐसा। ऐ..ई...! यह उल्टा बनता है ऐसा। अन्य को गुप्तरूप से कहे, देखो भाई! इतना करना, हाँ! मेरी प्रतिष्ठा बड़े इतना थोड़ा रखना। तुम मित्र हो न! स्वयं नहीं कहे, मित्र से कहलावे, जगत में ऐसा होता है। भिखारी हैं, रंक हैं, पागल! दुनिया से सम्मान लेना चाहते हैं। यह राजा, महाराजा, सब भिखारी हैं। समझ में आया? भले करोड़-करोड़ की जागीर कहलाये (परन्तु) रंक के रंक हैं, भिखारी में भिखारी है। हमें बड़ा कहो, हम राजा हैं, हमें बड़ा गिनो।

एक बार हमने देखा था न! पालीताना दरबार

था न, क्या (नाम) थाय वे मर गये हैं, हम (संवत्) २००६ की साल में बाहर निकले थे न? जाने के लिए, रास्ते में किसानों को ऐसा मनवावें; उस समय गाँधी का जोर था न? उसमें खड़े थे, नहीं? उस गाँवे में... तुम नहीं थे, नहीं? तुम नहीं थे न? कब कौन सी तिथि और काल की बात नहीं, तब यह था या नहीं इतनी बात है, उसकी लाईन अलग है, वहाँ आगे वे दो घोड़े में खड़े थे और दो घोड़े खड़े हों उसे कहते थे, समझे न? ए.. पटेलों! ऐसा मत करना, ए.. पटेलों! ऐसा मत करना। वे सबको कहते थे। अरे..! कहा, यह भी भिखारी है। समझ में आया? भिखारी है, यह रंक है, कहा।

कहते हैं, आहाहा..! ४९ हैं न यह... आयु गलती है और तृष्णा गलती नहीं। आयु बीते वैसे तृष्णा बढ़ जाती है। समझ में आया? 'मोह फुरइ' और मोहभाव फैलता जाता है। 'अप्पाहिउ णवि परन्तु अपनी आत्मा का हित करने का भाव नहीं होता।' आहाहा..! समय चला जाता है सारा। मान में सम्मान में, बड़प्पन में.. यह किया और यह मुझे माना और इसने बड़ा किया.. (जीवन) इसी में चला गया। आत्मा का हित करने का काल सब चला गया। इसका है न? वह गुजराती है न? क्या है गुजराती? गुजराती है या नहीं? कितने का है यह? ४९, इसमें ४८ होगा, इसमें थोड़ा अन्तर है, हाँ! एक का अन्तर है।

**मन न घटे आयु घटे, न घटे इच्छा-आशा।
तृष्णा मोह सदा बढ़े, इससे भ्रमता खास।।४९।।**

बहुत श्लोक किये हैं।

**आयु गले मन ना गले, इच्छा आशा न गलंत।
तृष्णा मोह सदा बढ़े, या ही भव भटकंत।।४८।।**

हिन्दी है। यहाँ तो ऐसा कहना है, राजा और भिखारी पर से कुछ महिमा चाहते हैं, उनकी तृष्णा बढ़ती जाती है और मोह की स्थूलता बढ़ जाये

व आत्मा का हित उन्हें सूझता नहीं। ऐसा मानो कि हम बढ़ गये-बड़े हो गये, ऐसे हुए-ऐसे हुए। आहाहा..! समझ में आया? लड़का अच्छा हुआ, फिर आमदनी करने में बढ़े... मूढ़ मानता है हम बढ़े किसके बढ़े?

श्रीमद् ने नहीं कहा 'लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये?' लक्ष्मी बड़ी-दो करोड़-पाँच करोड़, धूल करोड़... 'लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये?' सोलहवें वर्ष में कहते हैं। श्रीमद् राजचन्द्र सोलह वर्ष में (कहते हैं), सात वर्ष में जातिस्मरण था, यह श्रीमद् राजचन्द्र... १९५७ में देह छूट गया, सात वर्ष में जाति स्मरण-पूर्वभव का ज्ञान था, सोलह वर्ष में मोक्षमाला बनायी, उसमें ऐसा कहते हैं।

लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये? परिवार और कुटुम्ब है क्या वृद्धि नय पर तोलिये? संसार का बढ़ना अरे नर देह की यह हार है। नहीं एक क्षण तुझको अरे इसका विवेक-विचार है।

लक्ष्मी बढ़ी, दुकानें बढ़ी, वह क्या कहलाता है तुम्हारा? मुख के आगे बैठा हो उसे क्या (कहते हैं)? मुनीम! मुनीम बढ़े यह बढ़े धूल भी नहीं बढ़ी, सुन न! भटकने का बढ़ा है।

मुमुक्षु :- दिखता तो है।

उत्तर :- दिखता है न! भटकने का बढ़ा, हैरान... हैरान हो गया है। देखो न! पता नहीं पड़ता? है? आहाहा..! अरे! मुम्बई जाये तो इसका लड़का इसके साथ बात नहीं करे, उससे कहे बापू! अभी मुझे फुरसत नहीं है। यह जाये तो कहे बापू! मुझे अभी

फुरसत नहीं है, हाँ! बैठो! जाओ घर पर खाकर आना, मैं फुरसत में होऊँगा तो तुम्हारे साथ खाने आऊँगा। इसकी फुरसत नहीं होती। यहाँ तो कहते हैं कि बाहर के साधन बढ़ने से बढ़ा हुआ मानना, यह परिभ्रमण के कारण में बढ़ा है, फँसने के कारण में (बढ़ा है)। नर देह, ऐसा मनुष्य देह मिला... आहाहा..! मुश्किल से जन्म-मरण-जरा को मिटाने का यह भव है, भव को मिटाने का भव है-ऐसे भव को बढ़ाने का साधन बढ़ा परन्तु आत्मा का हित स्फुरित नहींहोता-ऐसा कहते हैं। देखो, है न? 'अपने आत्मा का हित करने का भाव नहीं होता।' समझ में आया? आहाहा..! चक्रवर्ती जैसी सम्पत्ति और बहुत बात ली है।

यहाँ अन्तिम शब्द आत्मानुशासन का है। 'मनुष्य सदा शरीर का पोषण करता है और विषयभोग भोगता रहता है, इससे अधिक खराब काम दूसरा क्या होगा? वह विष पीकर जीवन चाहता है।' जहर पीकर जीवन चाहता है। भगवान अमृत के आनन्दकन्द में अन्दर डूबे नहीं, अन्दर में आवे नहीं और बाहर में भटकाभटक भटका करता है, वह जहर पीकर जीवन चाहता है। तृष्णा बढ़ जाये, मरने तक तृष्णा बढ़ जाये, जाये नहीं वापस, वापस फिरे नहीं। क्यों भाई? फिर भाई की भी माने नहीं।

इसलिए कहते हैं कि इस सब तृष्णा को छोड़ और भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की श्रद्धा, ज्ञान, अनुभव कर। इसमें तेरे कल्याण का पन्थ है। बाकी दूसरी जगह कल्याण नहीं है-सब अकल्याण है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (अप्रैल-२०१८) का शुल्क उपकृत मुमुक्षुवृन्द के नाम से साभार प्राप्त हुआ है। जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।



पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार
ग्रंथके ९५४ वचनामृत पर भाववाही
प्रवचन, दि. २२-६-१९८५, प्रवचन
क्रमांक-५६८ (विषय : विधि)

कंचन, कामिनी और कुटुम्ब-इन तीनोंका त्याग करो तो धर्म होगा, अज्ञानी ऐसा कहते हैं। वे तो छूटे हुए ही हैं, फिर भी मैं उनको छोड़ता हूँ-यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। आमा उनसे पृथक् है व रागरहित है-ऐसे आत्माके भानपूर्वक राग छूटे, तो ही कंचन, कामिनी व कुटुम्बरूपी-निमित्त छूटे हुए कहलाए, अन्यथा निमित्त भी छूटे हुए नहीं कहलाते। स्वरूपमें लीन होना सो चारित्र है, बाह्य-

त्याग चारित्र नहीं है। अज्ञानी कहते हैं कि बाह्य-वस्तु त्यागो तो अंतरमें राग छूटेगा, पर वह बात मिथ्या है। ९५४.

पृष्ठ-१९०, ९५४. चारित्र विषयक वचनामृत है। जगतमें त्याग सम्बन्धकी प्रचलित मान्यता है। उसमें धर्म होनेके बजाय मिथ्यात्व होता है, वह विषय यहाँ है। 'कंचन, कामिनी और कुटुम्ब-इन तीनोंका त्याग करो तो धर्म होगा, अज्ञानी ऐसा कहते हैं।' ममत्वके निमित्त हैं, ऐसे जो संयोग हैं, क्रीमती गिने जाते हैं ऐसे कुटुम्ब-परिवार आदि, उन सबका त्याग करने-से धर्म होता है, ऐसा प्रचलितरूप-से अज्ञानीजनोंका बहुभाग समूह ऐसा कहता है कि धर्म करना हो तो त्याग करो।

उसे ऐसा कहते हैं, उस विषयमें ऐसा कहनेमें आता है कि 'वे तो छूटे हुए ही हैं।' अपने आत्मा-से वे अन्य द्रव्य होने-से, अन्य पदार्थ होने-से वह पदार्थ तो छूटे हुए ही हैं। कोई आत्माके साथ बँधे नहीं हैं। मात्र इस जीवका ममत्व है इसलिये बन्धन है। राग है इसलिये बन्धन है। अपने रागके कारण स्वयं बन्धनमें है। पदार्थ तो पदार्थके स्थानमें है। दूसरा पदार्थ तो दूसरे पदार्थके अपने द्रव्य-क्षेत्र-

काल-भावमें है। इस आत्मामें तो आया नहीं। परिस्थिति तो यह है, वस्तुस्थिति तो यह है। परन्तु ममत्व छोड़नेके बजाय, उस-उस पदार्थकी भिन्नता जानकर ममत्व छोड़नेके बजाय, उसमें जो अपनत्व माना है, उसे छोड़नेके बजाय, अपनत्व वैसा ही रखता है और पदार्थ छोड़नेका प्रयत्न करता है अथवा पदार्थ छोड़ता है, संयोग बदलता है। यद्यपि उसके विकल्प-से संयोग बदला नहीं है अथवा त्याग हुआ नहीं है। वह संयोग तो छूटनेवाला था तो छूट गया। उसमें भी उसका अधिकार तो नहीं है। फिर भी विकल्पानुसार पुण्ययोग हो तो वहाँ क्रिया बने। परन्तु स्वयं त्याग करनेका अभिमान करता है कि मैंने इस पदार्थको छोड़ा। परन्तु वह संयोग तो बदलनेवाला था और बदला है। विकल्प निमित्त हुआ, परन्तु वह विकल्प ग्रहण-त्यागका कर्ता-हर्ता है, ऐसी तो वस्तुस्थिति है नहीं।

वह-वह पदार्थ छूटे हुए ही हैं। वह पदार्थ आत्मामें-से भिन्न होने पर भी उसे मैंने ग्रहण किया था और अब मैं उसे छोड़ता हूँ, ऐसी जो मान्यता

है, वही मिथ्यात्व है। चारित्रिके प्रसंगको सम्यग्दर्शन एवं मिथ्यादर्शनके साथ कहाँ, कैसा सम्बन्ध है, यह भी समझना चाहिये। समझ-ज्ञानको भी सम्यग्दर्शन एवं मिथ्यादर्शनके साथ कहाँ सम्बन्ध है, वह भी समझना चाहिये। सुख-दुःखको भी सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शनके साथ कहाँ सम्बन्ध है, वह भी समझना चाहिये। ये सब समझनेके लिये प्रयोजनभूत मुद्दे हैं। यहाँ चारित्रिका बोल है।

लोग बाह्य-त्याग करके चारित्र पालते हैं, चारित्र पालन करते हैं ऐसा मानते हैं। वह परमार्थ-से तो चारित्र है नहीं। और धर्म हो रहा है एवं धर्म किया ऐसा मानते हैं, उसे मिथ्यात्वका बड़ा अधर्म होता है। धर्म तो वहाँ होता ही नहीं। परन्तु मिथ्यात्वका वहाँ बड़ा अधर्म होता है। अब, उसे यह बात कठिन इसलिये लगती है कि उसे बहुत कीमत देकर कहता है कि हमें तो पूर्व योग-से हमारे पास तो सब कुछ था। लाखों रूपये थे, कुटुम्ब-परिवार था, वह सब छोड़कर बैठे, उसकी आपको कोई कीमत नहीं है और उलटा हमें अधर्म होता है एवं मिथ्यात्व होता है, ऐसा कहते हो। इसलिये थोड़ा कठिन पड़ता है। लेकिन यह कहीं किसीको कहनेकी बात नहीं है या किसीको बुरा लगानेके लिये बात नहीं है या किसीको दुःख पहुँचानेके लिये भी बात नहीं है।

मुमुक्षु :- यह बात सुनकर कोई-कोई जीव...

पूज्य भाईश्री :- ऐसा है कि यह तत्त्वकी बात कोई जीव ही ग्रहण करता है, ऐसी अनादिअनन्त जीवसमूहकी परिस्थिति है। सत्य बात करने-से नुकसान होगा, इसलिये सत्य बातक करनेका बन्द करो।

मुमुक्षु :- यह बात ही ऐसी है कि...

पूज्य भाईश्री :- परन्तु वस्तु स्थिति ही ऐसी है। वस्तु स्थिति ही ऐसी है कि ममत्व छुड़ाना है, एकत्व छुड़ाना है। दोष होनेका मूल कारण है और अनन्त दोषकी परंपरा है, उस मूलको छेदना है। इस उपदेशकी दवाई जीवके रोगको मूलमें-से छुड़ानेकी है। ये त्याग करो, वह त्याग करो, ये छोड़ दो, यह नहीं खाना, यह नहीं करना, ऐसे संयम पालो, यह

करो, वह करो। ऐसे ऊपर-ऊपर-से मल्हमपट्टी करनेका यह मार्ग नहीं है। वह तो दुनियामें चलता ही है, सब संप्रदायमें ऐसे ही चलता है।

यहाँ तो जन्म-मरण छोटे ऐसा जो सम्यग्दर्शनरूप कारण है, और जन्म-मरण हो रहे हैं, जिसके गर्भमें अनन्त जन्म-मरण पड़े हैं, ऐसा मिथ्यादर्शनरूप कारण है, इस विषयको ही केन्द्रित किया है। पूरा विषय वहीं केन्द्रित किया है। गुरुदेवके समस्त प्रवचनोंका विषय वहाँ केन्द्रित हुआ है। भाई! तेरे जन्म-मरण मिटे नहीं और तू ऊपर-ऊपर-से त्यागादि मन्द कषायकी क्रियाएँ कर अथवा सेठ बनकर मिथ्यादृष्टिपनेमें ज्यादा पाप कर या देवलोकमें जाकर पुनः एकेन्द्रियमें जा, उसका क्या मतलब है? उसका कोई मतलब नहीं है। और त्रसका काल कितना? अनन्त कालमें त्रसका काल बहुत मर्यादित है। दो हजार सागर भी बहुत मर्यादित है। परन्तु वह तो उत्कृष्ट है। कोई जीव दो हजार सागर पूरे करता है। बाकी तो विपरीततामें सीधा नीचे चला जाता है। ये तो परिस्थिति है।

इसीलिये तो श्रीमद्जीने ऐसा कहा है कि अनन्त जन्म-मरण कर चुके इस आत्माकी दया कोई पात्रजीवको होती है। स्वयंकी दया आवे वह पात्र है, लो। ऐसे लिया है। अरे...! मेरा क्या? बहुभाग तो समाजके सामने देखते हैं कि समाजको ऐसा हो जायगा। इसमें दूसरोंको ऐसे हो जायगा, बहुत लोगोंको ऐसा होगा। भाईकी दलील यह है न कि बहुतोंको ऐसा होगा। लेकिन बहुत लोगोंका क्या काम है? तेरा काम है कि नहीं? तुझे क्षुधा लगी हो उस दिन बहुत लोग क्षुधावंत हैं, ऐसा तो तूने विचार कभी किया नहीं। जब तुझे क्षुधा लगी है, उस दिन दुनियामें बहुत लोग क्षुधावंत है, ऐसा विचार तो तू कभी करता नहीं है।

यहाँ भी बहुत लोगोंका विचार करता है और तेरा विचार छूट जाता है, ये यह सूचित करता है कि तुझे क्षुधा नहीं लगी है। ऐसा है। पात्रजीव तो मुझे कहाँ लाभ होगा? कैसे होता है? उसकी यह

एक ही दृष्टि रहती है। उसे सीधी यह एक दृष्टि रहती है। ऐसी सीधी एक दृष्टि रहनेके बजाय दूसरा-दूसरा विचार आये कि लोगोंको ऐसे नुकसान होगा, समाजमें ऐसा हो जायगी, फलानेको ऐसा होगा, उसे उस प्रकारकी एक वक्रता है। यह एक वक्रताका प्रकार है। बुद्धिकी वक्रता है।

मुमुक्षु :- स्वार्थी नहीं कहलायेगा?

पूज्य भाईश्री :- स्वार्थी होना तो अच्छा है। उसे स्वयंकी दया ही नहीं आयी है। वह तो कहा कि स्वयंको स्वयंकी दया ही नहीं आयी है। दुःखी होकर वह चूर-चूर हो गया तो भी समझता नहीं है। यह परिस्थिति है। असरलता भी कितनी वक्रता भी कितनी! अनन्त जन्म-मरण किये, अनन्त दुःख भोगे, फिर भी वह अपने हितकी दृष्टि करता नहीं। मेरा हित कैसे हो? वह एक ही दृष्टि होनी चाहिये, दूसरी दृष्टि नहीं होनी चाहिये। और उस प्रकार-से उसे सत्यको चीपकना चाहिये। सत्यका आदर करना चाहिये, परम आदर करना चाहिये। और वह सत्य ऐसा है कि सत्य-से किसीको नुकसान नहीं होता। कभी किसीको सत्य-से नुकसान हुआ हो, यह वस्तुकी स्थितिमें नहीं है। तो-तो पूरे विश्वका नाश हो जाय। सत्का नाश हो जाय। परन्तु वह परिस्थिति नहीं है। वह भी नासमझ जीवोंकी मिथ्या कल्पना है कि सत्य-से भी नुकसान होगा। ऐसा बनता नहीं।

मुमुक्षु :- संप्रदायमें ... बहुमान करे, इसलिये जीव फँस जाता है।

समाधान :- एकदम फँस जाता है। फँसता है तो कैसा फँसता है? एक तो इस मनुष्यगतिमें मान है, उसकी ऐसी प्रकृति है कि वह मानमें ही फँसता है। और उसमें मान प्राप्त हो तो देखने खड़ा नहीं रहता कि मेरेमें उस मानके लायक मेरी योग्यता है कि नहीं? यह देखने खड़ा नहीं रहता। इसलिये फँसता है तो ऐसा फँसता है कि बात मत पूछो। फाँसीके फँदे पर चढ़नेकी वह सब बातें हैं। मान-से दूसरा तो कुछ प्राप्त नहीं होगा, परन्तु भावमरण, वह सब भावमरणमें जानेका प्रकार है। लोग कहते हैं न ?

कहीं बचनेकी कोई आस न हो तो लोग ऐसा कहते हैं कि अब तो भगवान बचाये। वैसे जगतमें मान-सन्मानके ऐसे प्रसंग हैं कि अंतर भगवानको चीपके तो वह भगवान उसे बचाये, उसका भगवान उसे बचाये। नहीं तो थोड़ा कुछ करे तो मान-सन्मान, थोड़ा करे तो मान-सन्मान। अथवा वह मान-सन्मानको बचाकर ही चलना, उसके अलावा दूसरी बात नहीं। यह जगतकी परिस्थिति है।

इसीलिये तो श्रीमद्जीने यह कहा कि मान न होता तो मोक्ष हथेलीमें होता। यदि यहाँ मान न होता तो मोक्ष हथेलीमें होता। ज्ञानी सत्पुरुषको सुने तब भी उसे ऐसा लगता है कि मैं समझता हूँ ये तो मुझे मालूम है। इसप्रकार कहाँ-कहाँ मानका सेवन हो जाता है। त्याग करे तो त्यागका मान चढे, शास्त्र पढ़े तो उसका मान चढे। एक ऐसा छीपा हुआ दुश्मन है, इसलिये श्रीमद्जीने उस पर मुमुक्षुओंका ध्यान खीँचा है। 'मानादिक शत्रु महा निज छंदे न मराया।' तू उस मानको छोड़ने जायगा तो भी मुश्किल होगा। अत्यंत आसान रास्ता दर्शाया। 'जाता सद्गुरु चरणमां अल्प प्रयासे जाया।' एकदम सीधी लाईन बता दी है। ज्ञानीके शरणमें जा। जो बड़ा दुश्मन तुझ-से मरता नहीं, उसका सहजमात्रमें घात हो जायगा।

मुमुक्षु :- ..

पूज्य भाईश्री :- आ जाय तो-तो अच्छा ही है। जो वास्तवमें आ गये उसके लिये तो अच्छा ही है। आये हैं या नहीं, उसका विचार करना। मान छूटा हो तो विचार करना कि आये हैं। न छूटा हो तो आये हैं, यह बात नहीं रहती। सोनगढ़के स्वाध्याय मन्दिरके कम्पाउन्डमें चीटियाँ चौबीसों घण्टे रहती है, मक्खि चौबीस घण्टे रहती है, नीमके एकेन्द्रिय जीव बरसों-से चौबीसों घण्टे वहीं रहते हैं। आ गये कि नहीं शरणमें? संयोग है वह चरण-शरण है, ऐसा नहीं है। संयोग हुआ इसलिये। परन्तु जहाँ शरणमें आनेपर मान छूट जाय, तब समझना कि अब शरणमें आये। न छूटे तो समझना कि वहीके वही हैं। अनादि-से जहाँ है, वही है।

बहिनश्रीने भी उस विषयमें बहुत मार्गदर्शन दिया है। आत्मार्थीको मान मिलनेके प्रसंग-से दूर भागना। उन्होंने ऐसा कहा है कि तुझे मालूम पड़े कि ये सब मिलकर मुझे मान देनेवाले हैं। तो भाग जाना। क्या कहा? दूर भाग जाना। भाग जाना इतना ही नहीं उससे दूर भागना। ऐसी वृत्ति उसे होनी चाहिये। उसे अच्छा लगनेके बजाय दूर जानेकी उसे वृत्ति होनी चाहिये। तो जीव बचे। तो अभी उसे बचनेका अवकाश है। अवकाश है अभी। अन्यथा अवकाश भी नहीं रहता। ऐसा है।

‘मैं उनको छोड़ता हूँ..’ वह मान्यता मान सहितका ‘मिथ्यात्व है।’ परपदार्थ ऊपर उसका अधिकार जमाता है। और त्यागका अभिमान उसमें हुए बिना नहीं रहता। एक तो अनादिका पर्यायदृष्टि है। और ये सब पर्यायके फेरफार है। संयोगके फेरफार वह सब पर्यायके फेरफार है। इसलिये उसमें उसे अहंपना हुए बिना नहीं रहता। व्रत करे तब यह जूलुस निकालते हैं, उसका क्या करना? वह सब जीवको फँसनेके प्रसंग हैं। फिर बोले ऐसा कि दूसरोंको प्रेरणा मिले। दूसरोंको भी ऐसे व्रत करनेकी प्रेरणा मिले इसलिये हम यह सब घोषणा करते हैं।

मुमुक्षु :- अन्दर मान पोसता है।

पूज्य भाईश्री :- उस मानपोषण हेतु माया करे। वह माया हो गयी कि नहीं, नहीं। यह मेरी प्रसिद्धिके लिये नहीं है, अपितु दूसरोंको प्रेरणा मिले न। वैसे दानमें, सौ रूपयेका दान दिया हो तो मेरे नामकी घोषणा क्यों नहीं की? घोषणा नहीं हुयी तो उसमें क्या हुआ? अपनेको कहाँ मान चाहिये? अरे..! ऐसा नहीं, वह तो दूसरोंको प्रेरणा मिले इसलिये। परन्तु सौ रूपयेमें दूसरोंको कितनी प्रेरणा मिलेगी? उसे चाहिये मान और दूसरोंके लाभके निमित्त-से मैं मेरी बात करता हूँ, ऐसा करके मायाचारका सेवन करता है। वक्रता कहीं सीखनी नहीं पड़ती। असरलता, माया, वक्रता वह कहीं सीखनी नहीं पड़ती। बचपन-से उसे आ जाता है। स्कूलमें नहीं गया हो और खेलने गया हो, मालूम पड़ जाय तो.. कहाँ गया था?

तो जूठ बोलने लगेगा। उसे सीखाना पड़ता है कि तू दूसरा जवाब दे, उसे छीपा। उसे छीपानेके लिये कहीं सीखना नहीं पड़ता। वह सब मान एवं मायाका प्रकार साथ-साथ ऐसा जुड़ जाता है, एकदूसरेके साथ जुड़ जाता है कि जीवको तिर्यचगतिका कारण हो जाता है। मुख्यपने वह तिर्यचगतिका कारण है। मिथ्यात्व ही तिर्यच (गतिका) कारण है। निगोदमें जाता है न जीव? वह मिथ्यात्व भी क्रोध, मान, माया, लोभमें मायाकी प्रकृतिकमें जाता है। मिथ्यात्वकी प्रकृतिको यदि पकड़ें तो वह मायाकी प्रकृति है। ठगाता है न? माया-से ठगाता है। निज उपयोगको सूक्ष्म और धीरा करके ज्ञायकमें ले जानेके बजाय, सीधा चलनेके बजाय, मार्ग पर सीधा चलनेके बजाय टेढा जाता है। वह वक्रता हो गयी, माया हो गयी। वहाँ-से उसका सूक्ष्म स्वरूप शुरू हो जाता है।

मुमुक्षु :- इसलिये सरलता..

पूज्य भाईश्री :- इसलिये सरलताको अन्य सर्व प्रकार-से, व्यवहारिक सरलता, पारमार्थिक सरलता, सरलताका सर्वत्र अनुमोदन किया गया है। क्योंकि सरलताके फलस्वरूप मनुष्यगति है। चार गतिमें भी कुछ सरलता हुयी हो तो मनुष्यपना मिलता है। और उसमें भी जो पुरुषपर्याय है वह विशेष सरलताका कारण है। स्त्रीपर्याय मायाचारका फल है। वह सरलतामें उतनी हद तक सरलता... सरलताका ही सिद्धान्त कर देना चाहिये। चाहे जितना लाभ-नुकसान हो। लाभ-नुकसान अर्थात् बाहरमें जो कुछ गिना जाता है वह। सरलता, सरलता, सरल, सरल, सरल, सरल परिणाम, एकदम सरल परिणाम हो, उस जीवको इस मार्ग पर चढ़नेमें प्रतिबन्ध कम है। उसे प्रतिबन्धक कारण हटने लगते हैं। दूसरे प्रतिबन्धक कारण भी मार्ग देने लगते हैं। सरलताका बहुत बड़ा विषय है।

उन सब संयोगों-से आत्मा पर है। उनसे अर्थात् सब संयोगों-से आत्मा पर है। और मूल स्वरूप-से तो राग-द्वेष रहित है। शुद्ध वीतराग स्वरूप है। ऐसे आत्माके भानपूर्वक राग छूटे, ऐसे वीतरागी स्वरूपके भानपूर्वक परपदार्थ प्रतिका राग छूटे, वह राग छूटे

‘तो ही कंचन, कामिनी व कुटुम्बरूपी-निमित्त छूटे कहलाए,...’ ‘क’का एलिट्रेशन किया है। क.. क.. क.. लिया है। ‘निमित्त छूटे कहलाए,...’ वह छूटे ऐसा कहनेमें आये, बोलनेमें आये, वह तो भिन्न ही है। परन्तु यदि जीवका राग छूटे, जिससे वह बँधता था, जिससे वह सम्बन्ध करता था, जिस राग-से वह सम्बन्ध करता था, वह राग छूटा इसलिये सम्बन्ध छूटा। सम्बन्ध छूटा इसलिये वह पदार्थ भिन्न ही हैं, पदार्थ छूटे, ऐसा पदार्थ पर आरोप किया जाता है कि ये पदार्थ छूटे। वस्तुतः तो सम्बन्ध करनेवाला भाव छोड़ा है। और नुकसान करता है उसे भाव, संयोग नुकसान नहीं करता है, परन्तु उसे उसका अपना भाव नुकसान करता है।

यदि संयोग नुकसान करे तो भगवान अरिहन्तको समवसरणको नुकसान होना चाहिये। समवसरणमें जगतका सर्वोत्कृष्ट वैभव एकत्रित हुआ है। जो इन्द्रका कुबेर धनपतिने जो रचना की, उसे आश्चर्य हुआ कि अरे..! ये तो मेरी धारणाके बाहरकी रचना है। उतना वैभव वहाँ एकत्रित हो गया। तो अरिहन्त भगवानको उसका परिग्रह गिनेंगे या नहीं? वह परिग्रह भगवानको बिलकूल नहीं है। परन्तु इतनी चकाचौंध है, जहाँ दीपक करनेका प्रश्न नहीं है। उतना प्रकाश तो स्वयं वहाँके पदार्थोंका है। भगवानका शरीर भी उतना तेजोमय है। और समवसरणके पदार्थ भी, वहाँ कोई इलेक्टिकके वायर लगाने नहीं पड़ते। भगवानको सम्बन्ध नहीं है। ‘नथी ए ज्ञेयोमां तुङ्ग परिणति सन्मुख जरा।’ उसके सन्मुख-सामने नहीं देखते। भगवान उसके सामने भी नहीं देखते। इसलिये उनको परिग्रह नहीं है। संयोग-से परिग्रह नहीं है, परन्तु ममत्व-से परिग्रह है।

मुमुक्षु :- मूर्छा परिग्रह।

पूज्य भाईश्री :- मूर्छा परिग्रह। उमास्वामीका सूत्र है-मूर्छा परिग्रह। परपदार्थ प्रति आसक्तिवश मूर्छा होती है। आसक्ति होती है सुखके आभास-से कि यह मुझे सुखका कारण है। इस प्रकार उसे उसमें सुख मृगजलकी भाँति दिखता है। है तो नहीं। ऐसे जो मूर्छा होती है, तब उसे परिग्रह कहनेमें आया है।

उस पदार्थका नाम ‘परिग्रह’ तब दिया गया। जीवकी मूर्छा हुयी तब। यदि मूर्छा न हो तो भगवानका समवसरण... कहनेमें ऐसा आये, जगत ऐसा कहे कि ये फलाने भगवानका समवसरण है। भगवानकी मालिकीका है? नाम लिखा हो। सीमंधर देवाय नमः। सीमंधर भगवानके समवसरणके दरवाजे पर नाम लिखे कि सीमंधरदेवको नमस्कार। यह सीमंधर भगवानका समवसरण है। सीमंधर भगवान कहते हैं कि, मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। पूर्वका पुण्य है इसलिये नाम दिया जाता है। फिर भी भगवान वीतराग होने-से उन्हें तो रागका अनन्तवाँ अंश भी नहीं है। तो उन्हें परिग्रह नहीं है ऐसा कह सकते हैं। उन्हें परिग्रह है ऐसा कहा जाय? परिग्रह नहीं ऐसा कह सकते हैं।

वे छूटे हैं, ऐसा कहनेमें आये। ममत्व नहीं है इसलिये छूटे ऐसा कहनेमें आये। पहले ममता हुयी है, फिर ममता रहित हुए हो, इसलिये उसे छूटे ऐसा कहनेमें आता है। पहले ममता नहीं की हो तो छूटे हैं, वह प्रश्न नहीं रहता। ऐसा उपचार करनेका भी प्रश्न नहीं रहता। नहीं तो ऐसा कहे कि, छूटे हैं, ऐसा क्यों कहते हो? छूटे हैं, ऐसा कहते हो तो हमें भी अन्दर छोड़नेका विचार आ जाता है। भाई! वे छूटे हैं, ऐसा कहनेके पीछे आशय यह है कि पहले वह जीव ममत्व करता था। अब उसने ममत्व छोड़ा है। अपनत्व भासित होता था, वह अपनत्व अब उसे भासित नहीं होता है। परपदार्थ ज्ञात होते हैं जरूर, परन्तु उसे उसमें अपनत्व भासित नहीं होता है।

दृष्टान्त लेते हैं न? कि मुनिराज, जिस नगरमें पहले निवास करते हो, उस नगरमें आहारार्थ आ पहुँचे। उनके ही कुटुम्ब-परिवार, कहलानेवाले हाँ, उनको तो अब है नहीं, मालूम पड़े तो दर्शन करने भी जाय। वन्दन, नमस्कार, स्तुति करे, प्रदक्षिणा करे, बहुमान-से। और गाँवके दूसरे लोग भी करे, नगरजन भी करे और उनके कुटुम्बीजन भी करे। तो मुनिराजको उसमें कुछ बटवारा होता होगा या नहीं होता होगा? कि ये मेरे कुटुम्बके सदस्य हैं और ये गाँवके हैं।

ऐसा कुछ दिखता होगा? ऐसा नहीं दिखता। यह प्रयोग करने जैसा विषय है। उन्हें वे 'मेरे' नहीं दिखते। यह विशिष्टता है।

मुमुक्षु :- यह प्रयोग पहले-से होता है?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, पहले-से ही होता है न। पहले-से ही होता है। फिर तो वह चारित्र्यमें दूसरोंको दिखाई दे ऐसे होता है। पहले जो होता है, वह अभिप्रायपूर्वकका और मान्यतापूर्वकका है। उसमें मान्यता छूटती है, अपनत्वका अभिप्राय छूट जाता है। फिर तो जगत देखे ऐसे दूसरोंको भी मालूम पड़ता है कि इसे अपनत्व नहीं दिखता है। अभी ये पत्र लिखकर रूपया मँगवाते हैं, वह तो सवाल ही नहीं है। करते हैं न? दूसरों-से पत्र लिखवाये कि यहाँ कोई तकलीफ नहीं है, हम यहाँ पहुँचे हैं। विहार करते-करते यहाँ आये हैं। उन्हें क्या काम है कि आप कहाँ हो? उसको आपका काम नहीं है और आपको उसका काम नहीं है। कोई तकलीफ हो तो लिखना। हम श्रावकोंके पास-से व्यवस्था करके आपकी तकलीफ मिटा देंगे।

मुमुक्षु :- अच्छा कार्य है न?

पूज्य भाईश्री :- अच्छा कार्य कर्हें या हिन कार्य कर्हें? जो कुटुम्ब-परिवार-से अलग हुआ, उस कुटुम्ब-परिवारकी अनुकूलता और प्रतिकूलता पर लक्ष्य जाय तो वह कहाँ अलग हुआ है? वह भिन्न हुआ ही नहीं, कुटुम्बमें ही है। उसकी वृत्ति-से तो वह कुटुम्बमें ही है। वह विहार करे वहाँ उनके समीपमें हो तो उनके कुटुम्बीजन दर्शन करे कि ये तो अपने कुटुम्बके महाराज हैं। ... पामर दशा हो गयी है। जैन संप्रदायमें यह कंगाल, धर्मदारिद्र्य है। धर्ममें दरिद्रता है, बहुत बड़ी दरिद्रता है। जो धर्म सिंहवृत्ति-से होता है, निरालम्ब निरपेक्ष जो द्रव्य है और जिसके परिणमनमें, धर्मके परिणमनमें भी निरपेक्षता है, निरपेक्ष परिणमन है धर्मका, अपेक्षित परिणमन नहीं है। वहाँ ऐसी सब स्थिति वह, परिस्थितिकी दरिद्रताको घोषित करती है। वह सब कंगालता है।

कहते हैं कि राग छूट जाय तब उसे छूटनेका

आरोप भी इसलिये दिया जाता है कि पहले उसने ममत्व किया था। यदि राग न छूटे तो बाह्य त्यागके कारण 'निमित्त भी छूटे हुए नहीं कहलाते।' नहीं तो वह निमित्त भी छूटे ऐसा व्यवहार उपचार उसे लागू नहीं पड़ता। परन्तु त्याग तो किया ही है। नहीं किया है, वास्तवमें उसने नहीं किया है। अभी उसकी ममता उसमें चल रही है। उसने त्याग नहीं किया है। परन्तु कोई ऐसा कहे कि जिसकी ममता हो उसकी भले ही हो, परन्तु हमें तो त्याग करनेके बाद विकल्प ही नहीं आता है, तो हमारा त्याग सच्चा है या नहीं? द्रव्य-से संयोग नहीं है और भाव-से विकल्प नहीं है। इसप्रकार द्रव्य व भाव-से हमने त्याग किया ऐसा गिने या नहीं गिने? तू कहाँ खड़ा है, उस पर निर्भर करता है। उस बातका निश्चय हम त्याग-से नहीं करेंगे। परन्तु तुने क्या ग्रहण किया है, उससे करेंगे। ऐसा है। वह सब पदार्थ, द्रव्य और भावके अभावस्वरूप जो आत्मा है, उसका ग्रहण है? उसके अस्तित्वका ग्रहण है? तो तेरा त्याग हम नक्की मानेंगे। नहीं तो तुने कोई दूसरे रागके आधार-से यह त्याग किया है कि मैं तो मुनि हूँ। मुनिपनेका राग किया। मिथ्यादृष्टिपने मुनिपनेके रागमें त्याग किया हो और तुझे द्रव्य एवं भाव-से संयोग दिखाई न दे तो भी वह वास्तवमें त्याग नहीं है। ऐसा है। लोग तो वाह-वाह करे कि आपको विकल्प नहीं है! आपने वैसे तो त्याग कर दिया, परन्तु आपको विकल्प नहीं आता, ये तो बहुत बड़ी बात है, बहुत बड़ी बात है। वह बात यहाँ नहीं है। नास्तिकी क्रीमत तो अस्तिपूर्वक है। लोग तो नास्तिको ही देखते हैं। इस विषयमें अनभिज्ञ होनेके कारण लोग तो नास्ति एवं त्यागकी इतनी क्रीमत करते हैं कि बात छोड़ दो। यहाँ कहते हैं, नहीं, तेरे पास अस्ति क्या है? यह बात कर। बादमें नास्तिका विचार करेंगे। तब तक नास्तिके सामने देखनेका वा उसे क्रीमत देना, वह ठीक नहीं है।

(प्रवचनका शेष अंश आगामी अंकमें...)



**पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी द्वारा
साधर्मीओं को लिखे हुए आध्यात्मिक पत्र**

(१७)

कलकत्ता
२५-७-१९५४

ॐ

श्री कहानगुरुदेवाय नमः

आत्मार्थी...प्रत्ये निहालचंद्रका धर्मस्नेह।

आशा है पूज्य गुरुदेव सुख-शान्तिमें विराजते होंगे। मुमुक्षुमण्डल प्रतिक्षण आत्माश्रित सुखकी वृद्धि में रत होवो!

आफका पत्र यथासमय मिला था। मेरा अजमेरमें तो लगभग १५-२० दिवस ही रहना हुआ था। आपने लिखा कि 'विकल्पनुं कांईक कार्य आव्युं नहीं' सो हमारा तो सिद्धांत भी यह ही है कि-विकल्प के अनुकूल कार्य होवे ही, यह आवश्यक नहीं है; विकल्प विकल्पमें, कार्य कार्यमें।

मोक्षमार्गीको कुटुम्बीजनों मध्ये सुख मिलता होवे, यह कल्पना ही गलत है।

**'जाल सौ जग-विलास, भाल सौ भुवन वास,
काल सौ कुटुम्ब काज, लोक-लाज लार सी।'**

- बनारसीदासजी

उसे तो निरन्तर आत्मरमणता चाहिए। 'अरे! जिसे धार्मिक जनोंके संग भी नहीं रुचते, उसे कुटुम्ब-संग तो रुच ही कैसे सकता है!' अरे! विकल्पाश्रित पदार्थसे भी लाभ नहीं, साथ ही विकल्पसे भी लाभ नहीं।

आपने लिखा कि 'निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध एवो छे के तीव्र भावना होय तो पापनो उदय पलटीने पुण्यनो उदय थई जाय।' विकल्पानुसार पदार्थकी प्राप्ति होना पुण्य नहीं है, वरन् तीव्रता पलटकर मन्दता होना पुण्य है। अतः राग छूटने अथवा कम होने में सुख है, पदार्थ के मिलनेमें नहीं। अतः आत्माश्रित रागकी मन्दता होवे, यह ही भावना है।

गुरुदेव कहते हैं : 'इच्छामां सावधानपुणं ज्ञानीने नथी, पोताना स्वभावनुं सावधानपुणं चूकीने परपदार्थमां सावधानपुणं ज्ञानी करतो नथी'-ज्ञानीने इच्छानी इच्छा नथी। प्रदेशे-प्रदेशे मैं मात्र चैतन्य-चैतन्य व आनन्द ही आनन्दसे ओत-प्रोत वस्तु हूँ। स्वरूपरचना पर्यायमें स्वतः ही हुए जा रही है। इच्छा तोड़ूँ, स्वरूपकी वृद्धि करूँ आदि विकल्पोंका जिस सहज स्वभावमें सहज ही अभाव है। अरे! सहज शुद्धपर्यायका भी जिस त्रिकाली ध्रुव वस्तुमें सहज ही अभाव है, ऐसी नित्य वस्तु मैं हूँ, त्रिकाली परिपूर्ण हूँ-ऐसी दृष्टि एकबार अवश्य-अवश्य हो जाओ-बस! सुखसमुद्रका दरिया एकदम सहज उमड़ पड़ेगा। परके लिये विकल्प करना बेकार है। अरे! मैं बिना किसीके ही अभी ही परिपूर्ण हूँ, एकबार ऐसी तीव्र भावना होनी चाहिए, ताकि सामान्य वस्तुके बोधका अवसर आये। 'परमें सावधानीपणा नहीं, स्वमें सावधानीपणा होना चाहिए।'

अरे द्रव्य सामान्य! तेरे प्रतापसे झुकती हुई पर्याय (परिणाम) भी सहज खड़ी होती जाती है; अनादिका बोझा प्रतिक्षण हटता जाता है; उत्तरोत्तर सुखकी वृद्धि होती जाती है। .. धन्य है तेरा बोध! गुरुदेव कहते हैं :-

‘ज्ञानीने ज्यां स्वरूपनिधान प्रगट्युं, त्यां पर्यायमां (शरीरमें नहीं, परिणाममें) जुवानी आवी जाय छे, निर्भयता अने निःशंकता थई जाय छे। क्षणे-क्षणे अबन्धस्वरूप प्रगट थतुं जाय छे। वर्तमान पुण्यभाव थाय अने एनुं फल हजो, एवी वांछा ज्ञानीने नथी।’

कीचड़में घँसनेपर भय वृद्धि पामता जाता है परन्तु चैतन्यमें घँसनेपर निर्भयता वृद्धि पामती जाती है। मैं चैतन्य चैतन्यमें ही चलता हूँ; जड जडमें; विभाव विभावमें; मुझ नित्यमें मेरी पर्याय (परिणाम)का भी प्रवेश नहीं है; अन्यकी बात ही क्या? अरे! परिणाम परिणमता है और उस ही समय ‘मैं अपरिणामी हूँ। अरे भगवान कारणपरमात्मा! तेरे दर्शन होते ही विभावकी पीठ दिखने लगती है; तेरा यथार्थ भान हुए बिना पूर्व में परिणामाश्रित परिणामोंका इतना तीव्र बन्ध कर चुका था कि उनकी अवधि खतम होनेके लिये तेरे दर्शन स्वभाविक होने ही थे। अरे चैतन्य! तेरी इतनी पहोलाई बिस्मित-सा कर देती है! हे गुरुदेव! आप कितनी पहोलाई तक प्रसर चुके हो, पहोलाई भी है साथ ही ठोसपना भी! हे गुरुदेव! आपकी वाणीका स्पर्श होते ही मानो विश्वकी उत्तमोत्तम वस्तुकी प्राप्ति हो गई। क्या मैं मुक्त होनेवाला हूँ! अरे! शास्त्रोंमें जिस मुक्तिकी इतनी महिमा बखानी है, उसे आपके शब्द मात्रने इतना सरल कर दिया! क्या विश्वमें अब और भी कुछ चाहना बाकी रह गई? अरे निरीच्छक वस्तु! रागरहित अतीन्द्रिय आनन्दका अपूर्व स्वाद-अपूर्व सहज ज्ञानकला!

गुरुदेव कहते हैं - ‘मारुं ज्ञानतत्त्व ज मने गमे छे। गमे ते क्षेत्र होय पण पोताना ज्ञानमां ज व्यापीने रहेवो छे ज्ञानी, पुण्य-पाप (विकारीभाव) शरीर के निमित्तमां अवगाहन करतो नथी, पण पोताना ज्ञानस्वरूपी गगनमण्डलमां ज व्यापे छे.’ देखी गुरुदेवकी ज्ञानानन्द मस्ती!

गुरुदेवकी कथनशैली तो देखो! कहते हैं कि - ‘अशुद्धता रोकाई जाय छे एटले के अशुद्धता प्रगट ज थती नथी, तेने अशुद्धताने रोकतो, एम कहेवाय छे.’

अभानदशामें चैतन्यगाँठ कर्मोंके संगमे कभी इधर लूढ़कती है व कभी उधर; परन्तु भानदशामें ऐसा बोध होता है कि ‘अरे! परिणाम परिणम गया और ‘मैं’ यूँ का यूँ ही रह गया’ - ऐसा ‘मैं’ त्रिकाली नित्य-ध्रुव अद्भुत रत्न हूँ।

गुरुदेवके चरणोंमें रत मुक्तिमण्डलीमें मेरे उत्तरकालके स्थानका निश्चित भान है, पर अरे! यह तो जड़ पद है, मेरा तो चैतन्य पद है।

**‘निज कल्पनाथी कोटि शास्त्रो, मात्र मननो आमलो,
गुरुवर कहे छे ज्ञान तेने, सर्व भव्य सांभलो।’**

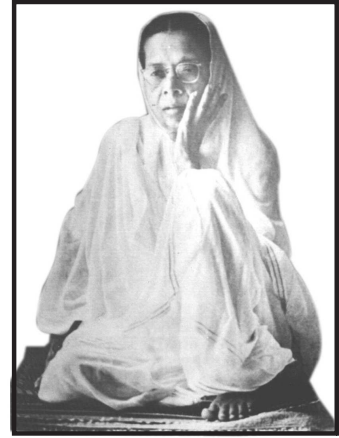
अनुभव लेखनीमें व्यक्त नहींहो सकता।

सबकों धर्मस्नेह।

- निहालचन्द्र



पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा



प्रश्न :- क्रमबद्ध पर्याय माननेसे पुरुषार्थ उड़ जाता है, यह बात ठीक है?

समाधान :- जो क्रमबद्ध है वह पुरुषार्थपूर्वक है। जो क्रमबद्धको यथार्थ माने उसमें पुरुषार्थ आ जाता है। क्रमबद्ध सच्चा माना कब कहलाये कि जिसमें पुरुषार्थ साथ हो। तब (सच्चा) माना है। पुरुषार्थपूर्वक क्रमबद्ध है। 'ऐसा ही होना है', वैसा निर्णय पुरुषार्थके बल और पराक्रमको सूचित करता है। पुरुषार्थपूर्वक क्रमबद्ध न माने तो वह क्रमबद्धको मानता ही नहीं है।

(स्वानुभूतिदर्शन-६१७)



प्रश्न :- अपनी शुद्धपर्यायके साथ तत्पना घटित होता है या अतत्पना?

समाधान :- अपनी शुद्धपर्यायके साथ तत्पना भी है और अतत्पना भी है। शुद्धपर्यायरूपसे आत्मा परिणमता है वह तत्पना है; और पर्याय जितना आत्मा नहीं है अर्थात् आत्मा तो अखंड है जब कि पर्यायका स्वरूप क्षणवर्ती है, इसलिये पर्यायके साथ अतत्पना है। इसप्रकार अपनी पर्याय है इसलिये तत्पना और पर्याय क्षणवर्ती है इसलिये अतत्पना है।

(स्वानुभूतिदर्शन-६१८)



प्रश्न :- स्थूल उपयोगको सूक्ष्म करके अंतरमें जानेकी विधि क्या है?

समाधान :- विधि तो अपनेको करना है। स्थूल उपयोगको सूक्ष्म करनेके लिये अंतरमें जाना, स्वभावको पहिचानना। अपना मार्ग अपने हाथमें है। बाह्य दृष्टि करनेसे उपयोग स्थूल हो जाता है और भीतरमें दृष्टि करनेसे-स्वभावको ग्रहण करनेसे-उपयोग सूक्ष्म होता है। स्वभावकी गहराईमें उतरनेसे उपयोग सूक्ष्म होता है। प्रज्ञाछैनीसे स्वभावको ग्रहण करे तो उपयोग सूक्ष्म होता है और यदि वह बाहर जाता है तो स्थूल होता है।

(स्वानुभूतिदर्शन-६१९)



प्रश्न :- पराश्रितज्ञान सर्वथा हेय है, तो परकी जानकारी भी हेय है न?

समाधान :- पराश्रितज्ञान अर्थात् परका आश्रय लेनेवाला ज्ञान वह हेय है; क्योंकि परकी ओर जानेसे उसमें राग होता है, एकत्वबुद्धि होती है। इसलिये वह हेय है। वस्तुतः ज्ञान कहीं हेय नहीं है; किन्तु परके साथ एकत्वबुद्धि करना, राग करना वह हेय है, तथा परका आश्रय लेनेसे ज्ञानोपयोग खंड-खंड हो जाता है (इसलिये उसे हेय कहा है)। ज्ञानका स्वभाव स्व-परप्रकाशक है। वीतरागदशा प्रगट हो तब स्व और परको जाननेरूप सहजज्ञान होता है; वह परको जानने नहीं जाता। 'इसे जानूँ... इसे जानूँ', इसप्रकार दर-दर भटकना नहीं पड़ता, एक आत्माको जाने उसमें सर्वस्व आ जाता है।

(स्वानुभूतिदर्शन-६१९)



प्रश्न :- स्वको जाने बिना, मात्र परको जानना यह क्या हेय है?

समाधान :- परको जानना वह हेय नहीं है, परंतु परमें निमग्न होना वह हेय है। मात्र परको जाने और ज्ञायकको न जाने वहाँ ज्ञेयमें निमग्न हो जानेसे वह हेय है। ज्ञानमें निमग्नता अर्थात् आत्मामें स्थिर रहना। ज्ञानमें ज्ञेय सहज ज्ञात होते हैं परंतु उनमें राग करना, निमग्न होना वह हेय है। मात्र परको जानना वह यथार्थ नहीं है, परंतु आत्माको जानकर परका जानना वह यथार्थ है। स्वपूर्वक परको जाने सो यथार्थ है। मात्र परको जानना वह विपर्यय है, मिथ्यात्व सहितका मिथ्याज्ञान है। **(स्वानुभूतिदर्शन-६२१)**



पूज्य भाईश्री समाधि दिन

मुमुक्षुओंके तारणहार, आत्मबोध दातार, निष्कारण करुणामूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाईका समाधि दिवस पर, हर वर्षकी भाँति इस वर्ष भी मुंबई, आग्रा, कोलकाटा, अहेमदाबाद, सोनगढ़ इत्यादि जगह-से मुमुक्षुओंने आकर स्वयंका वैराग्यभाव व आत्मभावना पुष्ट करके पूज्य भाईश्रीके प्रति श्रद्धासुमन अर्पित किये। अंतिम दिन प्रातःकाल प्रवचनके बाद उनके समाधि स्थल पर जाकर सर्व मुमुक्षुओंने भक्ति-भावना प्रगट की।

नवीन प्रकाशन

अध्यात्म सुधा भाग-११

पूज्य बहिनश्रीके वचनमृत ग्रन्थ पर पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा हुए प्रवचनोंका पुस्तक 'अध्यात्म सुधा भाग-११' (गुजराती) प्रकाशित किया गया है। जिन मुमुक्षु भाई-बहनोंको स्वाध्याय अर्थ मंगवाना हो वे ट्रस्टके कार्यालयमें संपर्क करके मंगवा सकते हैं।

संपर्क :- वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेकवाड़ी, भावनगर-३६४००१

१७६

बंबई, कार्तिक वदी ९, १९४७

जीवन्मुक्त सौभाग्यमूर्ति सौभाग्यभाई, मोरबी।

मुनि दीपचंदजीके सम्बन्धमें आपका लिखना यथार्थ है। भवस्थितिकी परिपक्वता हुए बिना, दीबन्धुकी कृपाके बिना, संतचरणकी सेवा किये बिना त्रिकालमें मार्ग मिलना दुर्लभ है।

जीवके संसार परिभ्रमणके जो जो कारण हैं, उनमें मुख्य स्वयं जिस ज्ञानके लिये शंकित है, उस ज्ञानका उपदेश करना, प्रगटमें उस मार्गकी रक्षा करना, हृदयमें उसके लिये चलविचलता होते हुए भी अपने श्रद्धालुओंको उसी मार्गके यथायोग्य होनेका ही उपदेश देना, यह सबसे बड़ा कारण है। आप उस मुनिके सम्बन्धमें विचार करेंगे तो ऐसा ही प्रतीत हो सकेगा।

स्वयं शंकामें गोते खाता हो, ऐसा जीव निःशंक मार्गका उपदेश देनेका दंभ रखकर सारा जीवन बिता दे यह उसके लिये परम शोचनीय है। मुनिके सम्बन्धमें यहाँ पर कुछ कठोर भाषामें लिखा है ऐसा लगे तो भी वैसा हेतु है ही नहीं। जैसा है वैसा करुणार्द्र चित्तसे लिखा है। इसी प्रकार दूसरे अनंत जीव पूर्वकालमें भटके हैं, वर्तमानकालमें भटक रहे हैं और भविष्य कालमें भटकेंगे।

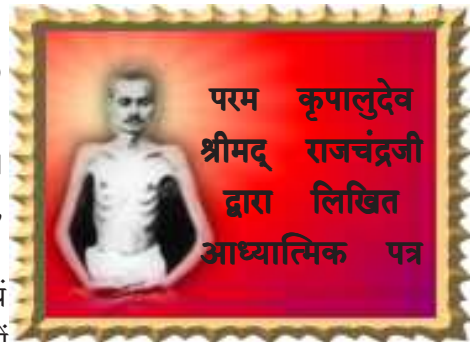
जो छूटनेके लिये ही जीता है वह बंधनमें नहीं आता, यह वाक्य निःशंक अनुभवका है। बंधनका त्याग करनेसे छूटा जाता है, ऐसा समझनेपर भी उसे बंधनकी वृद्धि करते रहना, उसमें अपना महत्त्व स्थापित करना और पूज्यताका प्रतिपादन करना, यह जीवको बहुत भटकानेवाला है। यह समझ समीप-मुक्तिगामी जीवको होती है, और ऐसे जीव समर्थ चक्रवर्ती जैसी पदवीपर आरूढ होते हुए भी उसका त्याग करके, करपात्रमें भिक्षा माँगकर जीनेवाले सन्तके चरणोंको अनंतानंत प्रेमसे पूजते हैं, और वे अवश्यमेव छूटते हैं।

दीनबंधुकी दृष्टि ही ऐसी है कि छूटनेके कामीको बाँधना नहीं, और बँधनेके कामीको छोड़ना नहीं। यहाँ विकल्पशील जीवको ऐसा विकल्प हो सकता है कि जीवको बँधना पसन्द नहीं है, सभीको छूटनेकी इच्छा है तो फिर बँधता है क्यों? इस विकल्पकी निवृत्ति इतनी ही है कि ऐसा अनुभव हुआ है कि जिसे छूटनेकी दृढ़ इच्छा होती है उसे बन्धनका विकल्प मिट जाता है; और यह इस बातका सत्साक्षी है।

एक ओर तो परमार्थमार्गको शीघ्रतासे प्रगट करनेकी इच्छा है, और एक ओर अलख 'लय'में समा जानेकी इच्छा रहती है। अलख 'लय'में आत्मासे समावेश हुआ है, योगसे करना यह एक रटन है। परमार्थके मार्गको बहुतसे मुमुक्षु प्राप्त करें, अलख समाधि प्राप्त करें तो अच्छा, और इसके लिये कितना ही मनन है। दीनबन्धुकी इच्छानुसार हो रहेगा।

अद्भुत दशा निरन्तर रहा करती है। अवधूत हुए हैं, अवधूत करनेके लिये कई जीवोंके प्रति दृष्टि है। महावीरदेवने इस कालको पंचकाल कहकर दुःषम कहा, व्यासने कलियुग कहा; यों बहुतसे महापुरुषोंने इस कालको कठिन कहा है; यह बात निःशंक सत्य है। क्योंकि भक्ति और सत्संग विदेश गये हैं अर्थात् सम्प्रदायोंमें नहीं रहे और ये प्राप्त हुए बिना जीवका छुटकारा नहीं है। इस कालमें प्राप्त होने दुष्कर हो गये हैं, इसलिये काल भी दुःषम है। यह बात यथायोग्य ही है। दुःषमको कम करनेके लिये आशिष दीजियेगा। बहुत कुछ बतानेकी इच्छा होती है, परन्तु लिखने या बोलनेकी अधिक इच्छा नहीं रही। चेष्टासे समझमें आये ऐसा हुआ ही करे, यह इच्छा निश्चल है।

वि. आज्ञाकारी रायचंदके दंडवत्।



पूज्य श्री सोगानीजी की १०७ वीं जन्मजयंति पर
कोटी कोटी वंदन
धन्य गुरु! धन्य शिष्य!



पूज्य गुरुदेवश्री के महापुरुणका यह एक पात्र है। सोनगढ़की तीर्थभूमि-इस तीर्थभूमिमें सम्यक्दर्शनरूपी सपूत कोई जागा नहीं था, तब तक जो-जो धर्मात्मा हुए वे सोनगढ़ भूमिमें नहीं हुए, अलग-अलग भूमि पर हुए हैं। जबकि गुरुदेवकी यह जो साधनाभूमि है, इस साधनाभूमिको साधनाकी एक नयी यशकलगी लगी और यह भूमि भी फलवंती हुई और एक फल पका-वे सोगानीजी हैं। पूज्य सोगानीजीका बहुमान, यह सिर्फ एक व्यक्तिका बहुमान नहीं है, यह सम्यक्दर्शनका बहुमान है और जो-जो सभी सम्यक्दर्शन धारक महात्माएँ हैं, धर्मात्माएँ हैं, उन अनंत-तीनों कालके धर्मात्माओंका बहुमान है, सन्मान है।

- पूज्य भाईश्री शशीभाई